International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2017; Page No. 83-84

दलित आत्मकथाओं में दमन का स्वरुप

[१] पूजा रानी, [२] डॉ० अखिलेश दुबे
[१] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, पी.एन.जी. रा.पी.जी. कालेज, रामनगर, उत्तराखंड, भारत।
[२] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी अन्तराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत।

प्रस्तावना

आज हिन्दी दलित आत्मकथाओं जैसे कि,अपने-अपने पिंजरे, जूठन, मुर्दईया, दोहरा अभिशाप, संतप्त, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर के माध्यम से हमें समाज का असली रूप देखने को मिलता है।

दलित आत्मकथाओं द्वारा आज अपने ऊपर होते आ रहे हजारों वर्षों के शोषण को सबके सामने लाया गया है। दलित आत्मकथाएँ सामाजिक अंधकार को खत्म कर एक समता-स्वतंत्रता, बंधुता संवेदना युक्त समाज का र्निमाण करने पर जोर दे रही है। आज दलित वर्ग को अनेकों यातनाओं, अपमान, दर्द, कुरीतियों को सहन करना पड़ता है, समाज में उन्हें कभी भी बराबरी का दर्जा नहीं प्राप्त हुआ, उन्हें जातिगत भेदभाव, दासता, अन्याय, अत्याचार, तिरस्कार तो जैसे विरासत में ही मिला है। उन्हें इसी संवेदहीन समाज में जैसे-तैसे गुजर-बसर करनी पड़ती है। वे बिना अधिकारों के कर्तव्य बोझ को ढोते हुए मूक और निर्बल बने सदियों से ठगे जाते रहे हैं और उन निरंकुश सवर्णों की गुलामी व अन्याय की चक्की में पिसते रहे हैं। दलित आत्मकथाओं के माध्यम से दलित समाज के लोगों के साथ हो रहे जातिगत भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया गया है। हिन्दू समाज में व्यक्ति की पहचान, गुण, योग्यता, कर्म के आधाार पर न होकर उसकी जाति से होती है। दलित आत्मकथाएँ एक तरह से दबे कुचले पीड़ित अपमानित वर्ग के संघर्ष का एक धारदार हथियार है। और इन्हीं के माध्यम से दलित वर्ग के लोगों को जागरूक किया जा रहा है उन्हें गलत स्थितियों और लोगों से सुरक्षित रखने का कार्य हो रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलितों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला। इन्होंने जैसा जीवन जिया था, जो अपमान पीड़ा त्रासद भेदभाव पूर्ण जीवन जिया था उसे उन्होंने आत्मकथा के माध्यम से सबके सामने प्रस्तुत किया। आत्मकथा में लेखक एक तरह से उन परिस्थितियों, यादों, जख्मों, दर्द और पीड़ाओं को दोबारा जीता है। उसका दोबारा अहसास करना बड़ा ही हृदय विदारक होता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी आत्मकथा 'जूँठन' में लिखते हैं, ''इस तरह मुझे फिर एक बार जीवन के उन गहन दंशों से गुजरना पड़ा था, जिन्हें भोगकर मैं यहाँ तक पहुँचा था। सचमुच 'जूठन' लिखना मेरे लिए किसी यातना से कम नहीं था। 'जूठन' के एक-एक शब्द ने मेरे जख्मों को और ज्यादा ताजा किया था, जिन्हें मैं भूल जाने की कोषिश करता था''[१]

अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से दलित आत्मकथाकारों ने उस समय की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। आत्मकथा लिखना बहुत बड़े साहस का काम है। हिन्दू समाज में तालाब पर पशु या अन्य जानवर चढ़कर पानी पी सकता है परन्तु दलित उस तालाब का पानी नहीं पी सकता है तथा मन्दिर नहीं जा सकता है, उस पर अनेको प्रतिबन्ध सवर्णों द्वारा थोपे गये।

झोपड़ी से राजभवन आत्मकथा में माता प्रसाद जी बताते हुए लिखते हैं, ''दलित जातियों का इतिहास बहुत पुराना है। आर्यों के आगमन के पूर्व इस देश में एक ऊँची सभ्यता थी जिसे सिन्धु घाटी की सभ्यता कहते हैं। मोहन जोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई के अवशेषों से यह सिद्ध हो चुका है कि जब इस देश पर आक्रमण हुआ तो प्राचीन सभ्यता नष्ट भ्रष्ट हो गई। आर्यों, अनार्यों का यहाँ युद्ध सदियों तक चलता रहा, इसे देवासुर संग्राम कहते है। आर्य इसमें विजेता हुए अनार्यों, को दास बना लिया गया। बहिष्कृत अनार्यों से आर्य बहुत नाराज थे क्योंकि ये लोग आर्यों के पशु बलि, यज्ञ के विरोधी थे। इन लोगों से मल साफ कराना, पशुओं को उठाना पशुओं के चमड़े से जूते तथा अन्य आवश्यक चीजें बनवाना, शमशान की रखवाली करना, जूठे पत्तलों को उठाना आदि अपमानजनक कार्य करने को विवश किया गया।''[२]

दलित समाज को बहुत तरह के अपमान, प्रताड़ना को सहन करना पड़ता था। अनेक वर्गों में बंटे भारतीय समाज में दलित वर्ग ऐसा है जिसे हजारों वर्षों तक शिक्षा से वंचित रखा गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसका आर्थिक विकास नहीं हो सका और इन दोनों के अभाव में उसे समाज में सबसे निम्न स्थान दिया गया। जातिगत भेद भाव की रोकथाम के लिए अनेक कानून बना दिये गये हैं, परन्तु इसके बावजूद दलितों के दमन में कोई कमी नहीं आ रही है।

अपने-अपने पिंजरे आत्मकथा में मोहनदास नैमिश्राय जी लिखते हैं, ''पुजारी थाली में भरकर प्रसाद लाता था। पर वह हमेशा ऊपर हाथ कर प्रसाद दिया करता था जिससे उसका हाथ हमसे छू ना जाये। परिणाम स्वरूप प्रसाद जमीन पर गिर जाता था जिसे हमें उठाना ही पड़ता था। न उठायें तो अगले दिन से प्रसाद मिलना ही बन्द । एक दिन प्रसाद देते हुए की अंगुलियाँ मेरे हाथ से छू गयी। बस पुजारी का पारा चढ़ गया। नाराज होते हुए वह झल्लाया-'' तू चमार का है न। सब कुछ भ्रस्ट कर दिया। कितनी बार कहा तुम ढ़ोरों से, प्रसाद दूर से लिया करो।''[३]

दलित आत्मकथाएँ दलित लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती है क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नरकीय और दासतापूर्ण जीवन हमको मिला है, उसमें किसी व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं है बल्कि हमारे समाज में फैली मनुवादी व्यवस्था का अपराध है इसलिए दलित आत्मकथाएँ हमेशा परिर्वतन की मांग करती हैं।

ओम प्रकाश बाल्मीकि जी अपनी आत्मकथा जूठन में बतातें हैं, ''उन दिनों गाँव में मरने वाले पशुओं को उठाने का काम भी चूहड़ों के जिम्मे था। जिनके घर में जो काम करता था, उनके पशु भी उसे उठाने पड़ते थे। इसके बदले में कोई मेहनताना या मजदूरी नहीं मिलती थी। एक गाय, एक भैंस को उठाने के लिए चार से छह लोगों की जरूरत पड़ती थी। जिसका मवेशी मर जाता था, उसे जल्दी लगी रहती थी। इसलिए वह बार-बार बस्ती में आकर चिल्लाता था। देर होने पर गालियाँ बकता था। उठाने वालों को इकट्ठा करने में अकसर देर हो जाती थी। मरे हुए पशु उठाना बहुत कठिन काम होता है उसके अगले पिछले पैरों को रस्सी से बाँधकर बाँस की मोटी-मोटी बाहियों से उठाना पड़ता है। इतने श्रम-साध्य काम के बदले मात्र गालियाँ.[४]

शिकंजे का दर्द आत्मकथा में केवल जाति वादी मानसिकता के कारण भंगी जाति के व्यक्ति को कोई मकान नहीं देता यहाँ तक उनकी सास का देहांत हो जाने बाद शव को रिक्शे पर रखकर ले जाना पड़ता मुहल्ले का कोई व्यक्ति

सहायता के लिए नहीं आता।

शिकंजे का दर्द आत्मकथा में सुशीला टाकभोरजी लिखती हैं, ‘‘जहाँ इतने साल से रह रहे थे उस मोहल्ले के लोग मुझसे एक शब्द नहीं बोले थे। इतनी बड़ी दुखद घटना होने के बाद भी संवेदना सहानुभूति का भाव नहीं बता सके। किसी ने अपने बच्चों को भी वहाँ झांकने नहीं दिया। ऐसा असामाजिक व्यवहार, ऐसा अमानवीय हृदयहीन व्यवहार ध् क्या हम इन्सान नहीं।‘‘५

दलित समाज को बहुत तरह के अपमानों को सहन करना पड़ता था वे उसके खिलाफ आवाज उठाने में भी डरते थे। बचपन से लेकर जीवनपर्यन्त उन्हें सवर्णों से दब कर ही रहना पड़ता था।

तुलसीदास जी अपनी आत्मकथा मुर्दाहिया में बताते हैं, ‘‘कक्षा चार में ही एक बार मिसिर बाबा पानी पिलाने कुएं पर गए। घिर्री पर डोर चढ़ाकर बाल्टी कुएं में डाली। मैंने कौतूहलवश कुएं के चबूतरे को एक उगंली से क्षण भर के लिए छू दिया। किन्तु मिसिर बाबा बाल्टी को कुएं में डूबाते हुए नीचे से कनखिया पीछे देख रहे थे और मुझे उंगली चबूतरे से लगाते हुए उन्होंने देख लिया। मेरे द्वारा इस महापातकी क्रिया से उनका ब्राहम्णत्व इतना आहत हुआ कि उनके हाथ से डोर छूट गई और बाल्टी कुएं की तलहटी में जा पहुँची। मिसिर शोर मचाते हुए मुंशी जी के पास दौड़े और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुआं छू लिया। मैं बहुत डर गया था उस दिन मुंशी जी दिन भर रूक-रूककर गालियां देते रहे।‘‘६

दलित आत्मकथाओं के माध्यम से पता चलता है कि अगर दलित वर्ग को शिक्षा, साहित्य और भूमि, भवन आदि संसाधनों से वंचित और सामाजिक गतिविधियों से अलग हटके मजबूर बना दिया गया है तो ये उनके पूर्व जन्मों के कारण नहीं बल्कि पक्षपातपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नियती के कारण है।

कौशल्या बैसन्त्री जी अपनी आत्मकथा ‘दोहरा अभिशाप‘ में लिखती हैं, ‘‘बस्ती के बाहर उच्चवर्गीय लोगों के लड़के भी हम पर बहुत जलते थे, ये हरिजन बाई जा रही है। दिमाग तो देखो इसका, बाप तो भिखमंगा है, साइकिल पर जाती है कहकर वे भी साइकिल से गिराने की कोशिश करते थे। अपने को उच्चवर्गीय समझने वाली औरतें भी मुझे साइकिल पर जाता देखकर बड़े कुत्सित ढंग से हंसती थीं। उन्हें ताज्जुब भी होता था कि हम अछूत मजदूर के बच्चे इतना कैसे पढ़ पाते हैं।‘‘७

दलित पीड़ा का दंश वही समझ सकता है जिसने इसे स्वयं झेला हो। सूरजपाल जी अपनी आत्मकथा संतप्त में लिखते हैं, ‘‘उनके मार्केटिंग मैनेजर डी०डी० धवन साहब की पीए० श्रीमती रमा शर्मा थीं। उन्हें जब तक सूरजपाल जी की जाति के बारे में नहीं पता था तब तक उनका व्यवहार सूरजपाल के प्रति बहुत सौम्य और अच्छा था और जब उन्हें उनके एस०सी० होने का पता चला तो उनका व्यवहार एक दम बदल गया। श्रीमती शर्मा के व्यवहार से अब मैं भी कभी-कभी झुंझला कर रह जाता, कई दिनों तक मैं यही सोचता रहा कि हो सकता है श्रीमती शर्मा के साथ पारिवारिक समस्या हो लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। ऑफिस में काम कर रहे वह दूसरे साथियों से पहले की तरह सहज रूप से व्यवहार करती जबकि मेरे सामने आते ही वह असहज हो जाती और मुँह बिचकाकर एक ओर हट जाती। एक रोज मैंने उनसे पूछ ही लिया मेम क्या हुआ‘ध मुझसे कोई भूल हो गई हैध ‘सूरज तुमने मुझे अपने भंगी होने की बात पहले क्यों नहीं बताई....... मैं भंगी चमारों से बात नहीं करती....... ये सभी गन्दे होते हैं।‘‘८

दलित आत्मकथाओं के माध्यम से ये परिलक्षित होता है कि दलित समाज को बहुत तरह के अपमान, दमन को सहन करना पड़ता था। वो अपने प्रति आवाज उठाने में डरते थे। प्रत्येक दलित आत्मकथा की आवाज तीखी, आक्रोशपूर्ण, यातनात्मक वीभत्स सच को उजागर करती है। हमारी सामाजिक परम्पराओं ने दलितों को वीभत्स, भयानक, जीवन प्रदान किया है। ये दलित आत्मकथाएं अपने ऐसे जीवन को समाज के सामने ला करके दलित को आत्मचेतना, आत्मक्रान्ति एवं आत्मबोध के लिए प्रेरित करती है। दलित आत्मकाथाएं दलित लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती हैं। ये दलित आत्मकथाएं अतीत के भयावह रूप को सबके सामने लाने में सफल रही हैं। आत्मकथाओं का उद्देश्य है कि आने वाली पीढ़ी इस भयावहता से बहार निकले, इन बन्धनों से मुक्त हो अपने अधिकारों के प्रति सजग हो, जिससे कि एक बेहतर समाज का निर्माण हो सके। ये आत्मकाथायें सभी को समानता के रास्ते पर चलने को प्रेरित करती हैं।

सन्दर्भ सूची

१. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन सन् २०१५, पृष्ठ ७८
२. माता प्रसाद, झोपड़ी से राजभवन, पृ०-१७.१८
३. मोहनदास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली सन् २००६ पृ०-३१
४. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन-राधाकृष्ण प्रकाशन सन्- २०१७ पृ०-४६
५. सुशीला टाकभोरे, शिकंजे का दर्द पृ०-१७१
६. तुलसीदास-मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन सन्- २०१६ पृ०-५५
७. कौशल्या बैसन्त्री, दोहरा अभिशाप, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ०-६१
८. सूरजपाल चौहान, संतप्त वाणी प्रकाशन, सन् २००६ पृ० ५४